Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 GISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

भारतीय राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव

डॉ विकास चन्द्र वशिष्ठ
एसो, प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ, भूमिका

सारांश –अपनी विरासत पर गर्व करना अच्छा है, परन्तु आंखे बन्द कर ऐसा नहीं किया जाना चाहिए इस विरासत के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। कोई परम्परा कवल इसलिए अच्छी नहीं होती क्योंकि वह दीर्घ काल से चली आ रही है । एक ओर जहाँ हम महान सांस्कृतिक विरासत के धनी हैं, वही दूसरी ओर हमारे परम्परागत समाज में कुछ बातें बुरी भी हैं। अतः यदि हमें समाज को लोकतांत्रिक बनाना और उन्नति करनी है तो इन्हें बदलना होगा। जातिप्रथा हमें प्राचीन समाज से मिली है तथा यह एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसका सामना हमारे लोकतत्र को करना पड़ रहा है । इसने हमारे समाज को उच्च और निम्न दो भागों में विभाजित कर दिया है हजारों वर्ष पूर्व हमारे समाज को या हिन्दू समाज को चार वर्गों में बॉटा गया था– ब्राहाण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र। ये वर्ग " वर्ण'' कहे जाते थे। किन्तु भारत में सामाजिक विषमता के लिये ये वर्ण उतने उत्तरदायी नहीं हैं जितनी की जातिप्रथा। जातिप्रथा ने किसी परिवार अथवा जाति विशेष में जन्म के आधार पर व्यक्ति के लिए व्यवसाय सुनिश्चित कर दिये थे। जातिवाद का जन्म जातीयता से है। जातियता का जन्म जाति प्रथा से है। जाति प्रथा का निर्धारण जन्म के आधार पर होता है।

मुख्य शब्द– भारतीय, राजनीति, जाति, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक,उन्मूलन, महात्मा।

भारतीय राजनीति पर जाति का प्रभाव– जातिवाद के विरूद्ध चारों तरफ से जोर की आवाज उठ रही है परन्तु जातिवाद और ज्यादा मजबूत बनती जा रही है। केवल बौद्धिक बहस की जा रही है सैद्धान्तिक तौर पर जातिवाद को मिटाने के लिये बहुत प्रयास किये गये परन्तु उनका उन्मूलन नहीं हो सका । एक से एक समाज सुधारक संत और महात्मा आये और जाति को मिटाने के लिए काफी प्रयत्न किये परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला । शास्त्रों की व्याख्या की गयी तथा निरन्तर उसका पाठ किया गया परन्तु जाति की जड़ मजबूत बनी रही । गौतम बुद्ध से लेकर संत कबीर तक तथा भगवान कृष्ण से लेकर महात्मा गाँधी डा0 भीमराव अम्बेडकर तक असंख्य लोग इसके विरूद्ध आवाज उठाते रहे । परन्तु इसका उन्मूलन नहीं कर पाये । डा0 भीमराव अम्बेडकर राम मनोहर लोहिया और प० दीनदयाल उपाध्याय ने अपने तौर पर इसको तोड़ने का प्रयास किया परन्तु तोड़ नहीं पाये इसके विपरीत इतना जरूर हुआ कि उन सभी महारूषों को जाति के कठघरे में कैद कर दिया गया इस देश में धर्म बदलना आसान है,परन्तु जाति बदलना कठिन है । इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जातिवाद के विरूद्ध चारों तरफ जोर की आवाज उठ रही है परन्तु जातिवाद और ज्यादा मजबूत बनती जा रही है। केवल बौद्धिक बहस की जा रही है। सैद्धान्तिक तौर पर जातिवाद को मिटाने के लिए बहुत प्रयास किये गये परन्तु उसका उन्मूलन हो सका । एक से एक समाज सुधारक, संत और महात्मा आये और जाति को मिटाने के लिये काफी प्रयत्न किये परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला शास्त्रों की व्याख्या की गयी तथा निरन्तर उसका पाठ किया गया । राजनीति को प्रभावित करने में जातियवादी राजनीति की भूमिका को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है।

निर्वाचन परिणामों को प्रभावित करना :

भारत के सभी निर्वाचनों में जातियवाद की भूमिका रही है और इसने निर्वाचन परिणामों को प्रभावित किया है। यद्यपि सन् 1977,1980 और 1984 के संसदीय निर्वाचनों में जातिवादी राजनीति को गहरा धक्का लगा और इसका प्रभाव नगण्य ही रहा, लेकिन 1989

और 1991 के संसदीय चुनावों तथा नवम्बर, 1993 के विधान सभा चुनाओं में इसका प्रभाव बढ़ा, तथा सन 200 जरता विधान सभा के चुनाओं में स्पष्ट तौर पर इसके परिणाम एक तरफा रहे तथा गुजरात में भारतीय एक तरफा रहे तथा गुजरात में भारतीय जनता पार्टी की नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकार बनी तथा गुजरात में जो भी साम्प्रदायिक दंगे हुए थे उसी के आधार पर गुजरात की राजनीति में एक तरफा परिणाम सामने आये । इसी प्रकार उत्तर प्रदेश की राजनीति में भी हलचल बनी हुई है। पिछड़े वर्गों में से अनेकों नेता निकलने लगे । यह संयोग और सौभाग्य था कि इस आन्दोलन को नेतृत्व देने वाले ऊँची जाति के नेता अधिक थे। उन्होंने खाद का काम किया अपने को खपा दिया, परन्तु यह भी दुर्भाग्य है कि वे पिछड़े और दलित नेता भी उन्हें भूल गये। डॉ लोहिया ने जन्म के आधार पर प्राप्त विशेषाधिकार को मिटाने के अवसर का सिद्वान्त दिया।

जाति की महत्वपूर्ण भूमिका :

सन् 1977 के पश्चात श्री चरण सिंह के नेतृत्व में देश की पिछड़ी जातियाँ उत्तर–प्रदेश, बिहार और हरियाणा में बड़ी तेजी के साथ शक्ति पुंज बनकर सामने आयी । जाट, अहीर, गूजर, यादव, लोधा और कुर्मी जातियों की राजनीति में पहचान हुई । सर्व श्री रामनरेश यादव, मुलायम सिंह यादव, चौधरी देवी लाल और स्व0 कर्पूरी ठाकुर इन जातियों के प्रमुख प्रवक्ता बने । वर्तमान में कांशीराम मुलायका सिंह यादव, राजनाथ सिंह, कल्याण सिंह, व मायावती और लालूप्रसाद यादव थे सभी नेतागण जातिवाद के आधार पर तथा पिछड़ी जातियों के मुख्य नेता हैं । ये सभी के चुनाव परिणाम में स्पष्ट तौर से प्रभावित कर सकते हैं।

मन्त्रि–परिषद के गठन को भी प्रभावित करना :

केन्द्र और राज्यों में मंन्त्रिमण्डल का निर्माण करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखा जाता है कि इसमें सभी प्रमुख जातियों का प्रतिनिधित्व हो जायें। दलित और पिछड़ों में ज्यो–ज्यों जागरण आते गया त्यों–त्यों उनमें नेतृत्व की भूख जागने लगी। उन्होंने संगठन बनाना शुरू किया । वोट बैंक बनाने के लिए ने अपना–अपना खेल खेलना शुरू किया। इस रहस्य को दलित एवं पिछड़े भी समझने लगे द्य जाति के आधार पर उनकी भी धुरी बनने लगी। आजाद भारत की घटनाओं की समीक्षात्मक विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जायेगा कि शुरू के बीस–तीस वर्षों तक राज्यों के मुख्यमंत्री में किस जाति के कितने थे । केन्द्र में मंत्रिमण्डल में और सरकारी उच्च पदों पर किस जाति के कितने थे। एक जाति विशेष के लोगों का वर्चस्व केन्द्र और राज्यों में कैसे बन गया था । एक वंश के लोगों का एकाधिपत्य कैसे स्थापित हो गया है था । खासकर बिहार और उत्तर प्रदेश मे जब जिस जाति का बोलवाला रहा उसी के सन्दर्भ में रहा।

प्रशासनिक ढाँचे पर दबाब :

प्रशासनिक ढाँचे और इसकी निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने में भी जातिवादी राजनीति की मुखरित भूमिका रहती है । अनेक बार जातिगत हितों की पूर्ति करने के लिए भी प्रशासनिक निर्णय लिये जाते हैं। विहार और उत्तर प्रदेश में जब जिस जाति के लोग विधान सभा अध्यक्ष, मुख्य सचिव, आरक्षी महानिदेशक तथा राज्य सेवा आयोग के अध्यक्ष के पदों पर आसीन हो गए । आधे से अधिक एक जाति के लोग मन्त्रि मण्डल के सदस्य बनाये गये । इसकों सभी अपनी आखों से देख रहे थे

। परन्तु यह सब योग्यता के नाम पर किया जाता था। यह प्रश्न वर्षों बाद दलित एवं पिछड़े समाज के शिक्षित युवा वर्ग पूँछ रहे है कि चयनकर्ता को अपनी जाति में ही योग्य लोग दिखाई पड रहे थे तो क्या अन्य जाति में योग्य लोग नहीं थे।

हिंसात्मक गतिविधियों का उदय :

जातियता के योग से हिंसात्मक घटनाएँ भी घटित हुई हैं। बिहार की राजनीति इसका ज्वलन्त उदाहरण है। विलेही और जहानाबाद की हिंसक घटनाएं रोगढ़े खड़ी कर देती हैं। बिहार, हरियाण, उत्तर प्रदेश, व राजस्थान में इस तरह की हिंसात्मक घटनाएँ घटित होती रहती हैं। हिंसात्मक घटनाओं में हरियाणा का दुलीना काण्ड इसको कहानी स्वयं कह रहा है जो कि इस प्रकार है।

जातिगत निष्ठा दलीय निष्ठा से अधिक प्रबल

भारतीय राजनीति मे सामान्य मतदाता जातिवाद की भावना से इतना अधिक ग्रस्त है कि वह मतदान करते समय न तो दल के दृष्टिकोण से सोचता है और न ही उम्मीदवार की योग्यता के दृष्टिकोण से । प्रायः सभी लोकसभायी अथवा विधानसभायी क्षेत्रों में सभी लोकसभायी अथवा विधानसभायी क्षेत्रों में सभी मतदाता अपनी अपनी जाति के उम्मीदवारों को वोट देते हैं। भारतीय राजनीति में यह प्रवृति खतनाक तथा लोकतन्त्र के लिये घातक है। गुजरात में जिस प्रकार भारतीय जनता पार्टी के संगठन को हिन्दुओं ने जिस प्रकार मजबूत किया और गुजरात चुनाव में नरेन्द्र मोदी को चुनाव जिताया और भारतीय जनता पार्टी की गुजरात में सरकार बनी उससे यह जाहिर होता है कि गुजरात में जातिगत निष्ठा दलीय निष्ठा से अधिक प्रबल थी।

उन्माद की राजनीति :–

आज लगभग हर राजनीतिज्ञ को अपना वोट बैंक प्रिय है, न कि समाज और राष्ट्र के हित। इसीलिए वे कभी मजहब और कभी दीन की राजनीति करते है, कभी मंदिर–मस्जिद की और कभी जाति और उपजाति की वे इस बात को अच्दी तरह समझ चुके हैं कि भारत सरीखे कम पढ़े–लिखे देश में सामूहिक उन्माद उत्पन्न करना आसान है और धार्मिक उन्माद तो बहुत ही आसानी से उत्पन्न किया जा सकता है, बस यह नारा लगाने भर की देर है कि 'मजहब खतरे में हैं।'' ऐसे नारे ऐसा उन्माद उत्पन्न कर सकते हैं कि सारा समाज ही भस्म हो जाए। क्या हम अपने समाज और अपने राष्ट्र को ऐसे नारों से बचा सकेगे? ऐसा नहीं है कि देश के राजनीतिक दलों में प्रबुद्ध व्यक्ति नहीं है। देश के सभी राजनीतिक दलों में प्रबुद्ध और संवेदन शील व्यक्ति हैं, पर पता नहीं क्यों वे अपनी बात ईमानदारी से नहीं कह पाते । यह तो क्लैव्यता हुई हो सकता है कि इन प्रबुद्ध और संवेदन शील व्यक्तियों को राजनीतिक जानबूझ कर बढ़ावा न देते हों, क्योंकि जहाँ समझदारी होगी वहाँ उन्माद उत्पन्न करने वाली बातें आसानी से नहीं की जा सकेगी। जहाँ समझदारी होगी वहा मजहब और दीन के नाम पर राजनीति करना भी आसान नहीं होगा।

भ्रष्ट राजनीतिज्ञों की भरमार :

चूंकि राजनीति में उच्च पदस्थ लोग अधिकांशतः अत्यन्त भ्रष्ट है अतः उनके ही चरित्र का अनुकरण समाज के अन्य वर्ग कर रहे हैं। जैसे राजा वैसी प्रजा की कहावत भारत में पूरी तरह से चरितार्थ हो रहा है। राजनीति के अपराधीकरण और राजनीतिक भ्रष्टाचार की समस्य को लेकर लगभग सभी प्रधानमंत्रियों ने चिंता व्यक्त की। इसी तरह देश के लगभग हर राष्ट्रपति ने इस समस्या को लेकर राष्ट्र को सावधान किया, लेकिन खतरे की घंटी बजती रही और उसकी ओर ध्यान किसी ने नहीं दिया । बात चाहें आर वेंकटरमन की हो या फिर शंकर दयाल शर्मा की या के0 आर0 नारायण की इन तीनों

राष्ट्रपतियों ने राजनीति के अपराधीकरण को लेकर बार–बार गंभीर टिप्पणियाँ की, लेकिन न तो संसद ने इन टिप्पणियों पर ध्यान दिया और न ही राजनीतिक दलों ने द्य चूंकि संसद एक सर्वोच्च संस्था है अतः इस देश की कोई भी संस्था है अतः इस देश की कोई भी संस्था उससे टकरा नहीं सकती और न ही उसे रास्ते पर । चलने के लिए बाध्य कर सकती है यह अपने आप में एक विडम्बना ही है कि जिस संसद पर राष्ट्र के श्रेष्ठ आदर्शो संविधान के पवित्र, उद्दश्यों और भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठतम परम्पराओं की रक्षा करने का दायित्व है वह अपने इस दायित्व के प्रति तनिक भी चिंतित नहीं है। जिन्हें चिंता करना चाहिए वे या तो जानबूझकर मौन हैं या फिर उन बुराइयों में लिप्त हैं जिनसे भारतीय राजनीति त्रस्त है । पहलीबार ऐसा हुआ जब सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले को बहुत गंभीरता से लिया और यह निर्देश दिया कि जो लोग चुनाव लड़ना चाहते है उन्हें अपना नामांकन पत्र दाखिल करते समय यह बताना होगा कि उनकी शैक्षिक योग्यता क्या है, वे किन–किन अपराधे में दंडित हुए है और उनकी तथा उनके परिवार की आर्थिक स्थिति क्या है? –– भारत की संसद राजनीति के अपराधीकरण और भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कठोर कानून नहीं बना सकी है और जो कानून आज के दिन उपलब्ध हैं वे इतने लचर और कमजोर हैं कि उनका उन लोगों द्वारा जमकर दुरुपयोग किया जा रहा है कि जो अपराध जगत से जुड़े हैं अथवा जो अत्यन्त भ्रष्ट हैं । इन लचर कानूनों के कारण ही जातिवाद और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला और भ्रष्टाचार निरंकुश होता चला गया। चुनाव जीतने के पहले जिन लोगों के पास तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र भी नहीं होते व चुनाव जीतने के कुछ ही समय बाद धन कुबेरों को भी मात देने में समर्थ हो जाते हैं। आज भारत में एक नहीं सैकड़ो ऐसे राजनीतिज्ञ . हैं जो करोड़पति ही नहीं, बल्कि अरबपति हैं। करोड़ों–अरबों की सम्पदा को अवैध तरीको से अर्जित करने वाले इन राजनीतिज्ञों का कोई भी बाल बाका नहीं कर सकता । तर्क यह दिया जा सकता है कि समाज के अन्य वर्गो में भी तो लोग अवैध सम्पदा अर्जित कर रहे है। बात सही हैं लेकिन आखिर समाज में जो भ्रष्टाचार आया उसके लिए उत्तरदायी कौन है? सर्वोच्च न्यायालय ने राजनीति के अपराधीकरण और चुनाव प्रक्रिया की दुर्बलताओं पर प्रहार करते हुए निर्वाचन आयोग को यह निर्देश दिया कि वह ऐसे नियम बनाए ताकि प्रत्येक प्रत्याशी मतदाताओं को अपने बारे में पूरी–पूरी जानकारी देने के लिए बाध्य हो । सर्वोच्च न्यायालय का यह क्रान्तिकारी निर्देश भारत के राजनीतिक दल सहन नहीं कर सकें और उन्होंने लगभग एक स्वर से कहा कि कानन बनाने का अधिकार तो संसद को है । यद्यपि राजनीतिक दलों की यह टिप्पणी सही है, लेकिन जिन मुद्दों पर कोई कानून नहीं है या कानून में जिन मुददों की चर्चा नहीं है वहाँ तो सवोच्च न्यायालय दे ही सकता है।

आरक्षण व जातिगत द्वेष

आरक्षण का उद्देश्य :

आरक्षण का अभिप्राय कुछ दुर्बल व्यक्तियों को सशक्त व्यक्तियों से बचाकर पदों की । उपलब्धता सुनिश्चित करना है भारत में सामाजिक एवं धार्मिक विषमताओं को ध्यान मे रखते हुए यह उचित समझा गया कि दुर्बल सामाजिक वर्गो को सबल वर्गो से बचाकर कुछ सरकारी नौकरियां, संसद एवं राज्य विधानमण्डलों में स्थान प्रदान किए जाए इसके पीछे संविधान निर्माताओं का उद्देश्य समाज के सामाजिक स्तरीकरण में निम्न कहे जाने वाले वर्गो, जो कि

शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए थे की आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक स्थिति को सुधारना था, उनका विचार था कि समाज के यह वर्ग वर्षो से सामाजिक स्तरीकरण के कारण पददलित एवं शोषित रहे है अतः इनका सर्वागीण उन्नयन कर समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्मान जनक स्थान दिलाना ही सामाजिक न्याय की स्थापना होगी। इस सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए

आरक्षण को माध्यम बनाया गया । सरकारी नौकरियों में इन वर्गों को आरक्षण प्रदान करने के पीछे तर्क यह था कि यह वर्ग सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ है जिसके कारण अन्य सामाजिक उच्च वर्गो की तुलना में यह नौकरियों में खुली समान प्रतियोगिताओं में सफल नहीं हो पाएगें। इस दुर्बल वर्ग के लिए नौकरियों में स्थान सुनिश्चित करने के लिए यह स्वीकार किया गया कि कुद स्थानों को केवल इनके लिए सुरक्षित किया जाय तथा इनके लिये आयु आदि मानकों में भी सामान्य अभ्यार्थियों की तुलना में शिथिलता प्रदान की जाए।

आरक्षण का इतिहास :

सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था स्वतंत्र भारत में ही नहीं अपितु स्वतन्त्रता से पूर्व भी यहाँ लागू थी। 1919 के भारत सरकार अधिनियम लागू होने के बाद भारत के मुसलमानों ने भारत में सरकारी नौकरियों में अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण की मांग की इस आरक्षण की मांग के दबाव के कारण ब्रिटिश सरकार ने 1925 में सीधी भर्ती होने वाली सरकारी नौकरियों में 33/, प्रतिशत स्थान अल्पसंख्यक समुदाय के लिये आरक्षित कर दिये। आरक्षण की इस व्यवस्था को भारत सरकार के एक गृह विभाग ने 4 जुलाई 1934 को एक प्रस्ताव द्वारा एक निश्चित आकार प्रदान किया । अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित किए गए इसके अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यक समुदाओं के लिए 25 प्रतिशत स्थान और 8/ प्रतिशत स्थान एग्लो इडिंयन समुदाय के लिये आरक्षित किये गये । इसके अतिरिक्त अन्य अल्पसंख्यक समुदाय के लिए 6 प्रतिशत स्थानों को आरक्षित करने का प्रावधान था । स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को दिया गया आरक्षण समाप्त कर दिया गया। लेकिन एग्लो इंडियन समुदाय के लिए आरक्षण की व्यवस्था आगामी दस वर्षों के लिए जारी रखी गई।

मुसलमानों एवं एग्लो इडियन समुदाय के स्थान पर संविधान निर्माताओं ने सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गो को सरकारी नौकरियों के आरक्षण की व्यवस्था के लिए संस्तुति की जिसे स्वीकार कर लिया गया। इस सामाजिक व शैक्षिक पिछडे वर्गों में अनसचित जातियों अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गो मे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़ी जातियाँ सम्मिलित है। राष्ट्रपति ने 1950 में एक संविधानिक आदेश जारी करके राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों में रहने वाली इस प्रकार की जातियाँ अनुसूचित जातियों की एक अनुसूची जारी की तथा इसी वर्ष राष्ट्रपति ने एक अनुसूची जनजातियों की, जोकि सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ी हुई थी की जारी की । इन अनुसूचित जनजातियों को प्रारम्भ में सरकारी नौकरियों में और लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं में और (एग्लो इंडियन के लिए भी) प्रारम्भिक रूप से दस वर्ष के लिये आरक्षण प्रदान किया गया जिसे समय–समय पर निरन्तर रूप से दस–दस वर्ष के लिए बढ़ाया जाता रहा जो कि वर्तमान में भी जारी है।

आरक्षण के लिए सांविधानिक प्रावधान :

भारत के संविधान में समानता के मौलिक अधिकार के तहत लोक नियोजन में व्यक्ति को अवसर की समानता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 16 के अनुसार राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के अवसर की समानता प्रदान की गई है, लेकिन राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्य के पिछड़े हुये नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है। नियुक्ति में आरक्षण के लिए व्यवस्था कर सकता है। साथ ही 17वें संविधान द्वारा अनुच्छेद 16वें 4 क जोड़ा गया जिसके द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के पक्ष में राज्य के अधीन सेवाओं में प्रोन्नति के लिए प्रावधान करने का अधिकार राज्य को प्रदान किया गया है।

पिछड़े वर्ग का तात्पर्य यहाँ सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए वर्ग से है। अनु० 1 5 में धर्म मूलवंश, जाति लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेद्य किया है साथ ही अनु0 1 5 (4) राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ते हुऐ नागरिकों के किन्हीं – वर्गो की उन्नति के लिये या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विशेष उपबन्ध करने का प्राबधान या अधिकार प्रदान करता है।

आरक्षण के लिए आधार :

किसी वर्ग को आरक्षण प्रदान के लिए आवश्यक है कि –

1. वह वर्ग सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा हो ।
2. इस वर्ग को राज्याधीन पदों पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व न मिल सका हो।
3. कोई 'जाति' इस वर्ग में आ सकती है यदि उस 'जाति' के 90 प्रतिशत लोग सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हो ।

दूसरा प्रमुख विवाद का विषय यह रहा है कि कुल कितने प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जा सकता है द्य संविधान में इस विषय पर कुछ नहीं लिखा गया है। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने एम0 आर0बालाजी बनाम मैसूर राज्य वाद (1963) में यह निर्णय दिया कि कुल आरक्षण कुल रिक्तियों के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए । मण्डल आयोग की संस्तुतियों को 1991 में लागू करने पर इसे उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय की विशेष संविधान पीठ ने भी यह निर्णय दिया कि कुल आरक्षण कुल रिक्तियों के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता।

राजीनीतिक लाभ के लिए आरक्षण का प्रयोग :

संविधान निर्माताओं ने आरक्षण की वकालत और व्यवस्था भले ही सकारात्मक सोंच के कारण की हो, लेकिन स्वतन्त्र भारत के राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक दलों ने आरक्षण की मूल भावना को तिरोहित कर आरक्षित जाति को चुनावों की राजनीति में अपनी ओर मतदान कराने के लिए हर सम्भव प्रयास इनके द्वारा किये जाते रहे, कांग्रेस दल इस आरक्षित वर्ग के लिए निरन्तर आरक्षण बनाए रखकर लगभग चालीस वर्ष तक इसे अपने साथ बांधे रखने में सफल रहा।

आरक्षण जिसकी व्यवस्था पिछड़े वर्गो को ऊपर उठाकर समाज में समर सत्ता लाने के लिए साधन के रूप में की गई थी, को राजनीतिक दलों ने मत प्राप्त करने का साधन बना लिया अनसचित जातियों एवं अनसचित जनजातियों के अतिरिक्त अन्य जातियों को आरक्षण का लाभ दिलाने के लिए नेताओं ने उन्हें चिन्हित कर इस ओर प्रयास किए । सर्वप्रथम इस दिशा में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने प्रयास किया मोरारजी देसाई सरकार ने वी0पी0 मण्डल '–– की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया जिसे पिछड़े वर्गों को आरक्षण के लिए संस्तुति देने को कहा गया ।

भारतीय राजनीति में जातिवाद भयंकर बीमारी के रूप में

भारतीय राजनीति में जातिवाद एक बीमारी की तरह है जिस तरह से कोई भयंकर बीमारी छूत के रोग की तरह से शरीर में प्रवेश कर जाती है उसी तरह से जातिवाद भी पूरे समाज में भयंकर बीमारी की तरह से फैला हुआ है। हमारे समाज से धीरे–धीरे यह राजनीति में फैल चुका है। जिसे कि भारतीय राजनीति से निकालना बहुत ही मुश्किल कार्य है। इस जातिवाद की राजनीति से समाज के सभी वर्ग ग्रसित है । सभी नेतागण जिस तरह से जातिवाद की अंधी दौड में शामिल है जिससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है। कि यदि एक दो व्यक्ति इससे पीड़ित होते तो उसे दूर किया जा सकता था, लेकिन यह तो पूरे समाज में फैला हुआ है। जिन जातियों को जन्म के आधार पर योग्यमान लिया गया उनके हाथों में शासन,

प्रशासन, प्रतिरक्षा एवं लेखा की जिम्मेदारी दे दी गयी । गुलाम भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब जनम के आधार पर सुयोग्य लोगों के हाथों में भारत का शासन, प्रशासन प्रतिरक्षा और लेखा की जिम्मेदारी थी तब देश बार–बार गुलाम होते रहा । ऐसा क्यों हुआ? जब सुयोग्य लोगों के ऊपर जिम्मेदारी थी और बहुसंख्यक लोगों को आयोग्य कहकर उन्हें अलग रखा गया था तब गुलामी के लिए कौन जिम्मेदार थे । जो लोग जिम्मेदार थे उन्होंने हार की जिम्मेदारी क्यों नहीं स्वीकार की थी। यह एक दर्दनाक विडम्बना है कि जीत का श्रेय वे लेते रहें और हार के लिए आम लोगों को जिम्मेदार बनाते रहें। आज भी यह प्रथा चल रही है। आजाद भारत में प्रारम्भिक काल में पिछड़े वर्गो एवं दलित समाज में शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार नहीं था । इसलिए वे सरकारी सेवा में नगण्य थे। डा0 अम्बेडकर इस रहस्य को जानते थे । महात्मा गाँधी भी समझते थे अनुसूचित जाति एवं जनजाति को जनसंख्या के आधार पर राजनीतिक तथा प्रशासनिक आरक्षण दिया गया, परन्तु उस पर अमल ईमानदारी से नहीं किया गया । नियत सही नहीं थी। महात्मा गाँधी के विचार का प्रभाव तथा डॉ अम्बेडकर का दबाव था कि आरक्षण लागू नहीं होता तो दलित समाज में से एक भी विधायक और सांसद नहीं बन पाते । प्रथम दौर में उन वर्गो के विधायकों और सांसदो का उपभोग किया गया परन्तु धीरे–धीरे उनमें राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना का जागरण होते गया और वे अपने अधिकार की माँग करने लगे। उनमें से तेजस्वी और प्रखर नेता पैदा होने लगे।

जब डा0 राम मनोहर लोहिया का युग आया तो उन्होंने सिद्धान्त दिया कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े, महिला और धार्मिक अल्पसंख्यकों को सरकारी सेवा, राजनीति, व्यापार और पलटन में कम से कम साठ प्रतिशत स्थान दिया जाये। समाजवादियों ने नारा लगाया 'डॉ० लोहिया बाँधे गाँठ पिछड़ा पावे सौ में साठ । ५

और ज्यादा मजबूत होता जातिवाद :

इस देश में धर्म बदलना आसान है, परन्तु जाति बदलना कठिन है। इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दे रहा है कि हिन्दू समाज के लोग धर्म परिवर्तन कर दूसरे धर्म में चले तो गये पर जाति के धब्बा से मुक्त नहीं हो पाये । धर्म बदलने के बाद भी हिन्दू समाज में जनम के आधार पर जिस जाति को जो सामाजिक दर्जा प्राप्त था वहीं दर्जा उन्हें वहाँ भी प्राप्त हुआ । धर्म बदलने के बाद भी वे अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्गो के बने रहें।

पिछड़े वर्गो से अनेकों नेता निकलने लगें। यह भी संयोग और सौभाग्य था कि इस आन्दोलन को नेतृत्व देने वाले ऊँची जाति के नेता अधिक थे। उन्होंने खाद का काम किया और अपने को खफा दिया, परन्तु यह भी दुर्भाग्य है कि वे पिछड़े और दलित नेता भूल गये । डॉ लोहियाँ ने जन्म के आधार पर प्राप्त विशेषाधिकार को मिटाने के लिए विशेष अवसर का सिद्वान्त दिया था। संसोपा की राष्ट्रीय समिति के सदस्यों का चुनाव होता था, लेकिन जव राष्ट्रीय समिति में विशेष अवसर के सिद्धान्त के अनुसार उन वर्गो को साठ प्रतिशत स्थान नहीं मिल पाता था तब ऊँची जाति के लोग इस्तीफा देने वाले विशेष आमत्रिंत के तौर पर सदस्य बना लिये जाते थे । मार्गदर्शक और संरक्षक वे रहते थे, परन्तु प्रत्यक्ष में मंच पर पिछड़े समाज के नेता को अवसर देते थे। सन् 1964 से 1968 तक संसद को देखने से पता चल जाएगा कि लोहिया क्या थे? खुद लोकसभा में थे परन्तु संसदीय दल के नेता के पद पर मनीराम बग्गड़ी और रामसेवक यादव तथा रवि रे जैसे पिछड़े को नेता बनाकर अग्रिम पंक्ति में रखते थे। पत्रकारों के पूंछने पर उन्होंने कहा था कि वे पीछे भी रहेंगे तब भी उनकी आवाज सुनी जायगी । यही कारण था कि पिछड़े समाज के दिल को लोहिया ने जीता था। – यदि डॉ लोहिया ने यह दर्शन नहीं दिया होता तो भारत के हृदय प्रदेश के सभी हिन्दू उर्दू भाषी राज्यों में साम्यवाद का झण्डा लहरा गया होता । डा0 लोहिया ने भारत के हृदय प्रदेश में साम्यवाद को बढ़ने से रोककर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, भारतीयता, गाँधीवाद और संसदीय

लोकतान्त्रिक व्यवस्था की रक्षा की थी। इस ऐतिहासिक और सामाजिक तथ्य, सत्य एवं रहस्य को जानने एवं समझने की आवश्यकता है।

क्या सामन्त, सम्पन्न और समृद्ध वर्ग को जातियता करने का विशेषाधिकार प्राप्त है और अन्य लोगों के लिए अपराध है? संगठन और सरकार के स्वरूप से ही राजनीतिक दलों की मानसिकता का पता चलता है । महान क्रान्तिकारी लेनिन ने कहा था कि जैसा समाज बनाने का संकल्प है पहले दल के संगठन का स्वरूप वैसा ही बनाओ। क्योंकि आम लोग संगठन को देखकर ही दल की दृष्टि एवं दिशा का मूल्यांकन करते हैं । जैसा कि कबीर ने कहा था "पंडित बांचे पोथी लो कबीरा बाँचे आँखीन देखा'' जातिवाद और जातियता को मिटाने के लिए जाति प्रथा को मिटाना पड़ेगा । बाबू जगजीवन राम की पुत्री कुशवाहा से शादी करने से शादी करने के बाद भी अनुसूचित जाति बनी रहती है। स्व 0 इंदिरा गाँधी, पारसी, से शादी करने के बाद भी हिन्दू और ब्राह्मण बनी रहती हैं। ऐसा क्यों होता है? भारत में जाति की जड़ रोटी में नहीं बल्कि बेटी में हैं । रोटी के मामले में जातीयता मिट चुकी हैं कोई किसी से कहीं जाति नहीं पूछता है। सभी एक साथ खाते पीते हैं परन्तु विवाह के समय बेटी वहीं देते हैं जहाँ जन्म के आधार जाति से बंधे होते हैं। क्या इसको तोड़ा जा सकता है। अपवाद स्वरूप कुछ ऐसे उदाहरण मिल सकते है। निम्न तथा मध्यम स्तर पर हमने यह भी देखा है कि जाति तोड़कर विवाह करने वाले को कितना प्रताड़ित किया जाता है । कथाकथित सभ्य समाज को उस पीड़ा और प्रताड़ना का अहसास नहीं होता है। क्या जाति और जन्म के आधार पर सभी आरक्षण को समाप्त कर नया आधार नहीं बनाया जा सकता है ?

दलितों पर बोझ सभ्यता :

झज्जर जिले में दिल दहलाने वाली यह घटना हमारे रूढ़िवादी, अंधविश्वासी व अशिक्षित समाज के लिए कोई नई बात नहीं है और न ही इस तरह की घटनाएं उनके कठोर दिल पर कोई असर कर पाती हैं। सदियों पहले हमारे समाज को चार भागों में बाँटा गया । ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र । इनके अलावा 5वीं जमात अछूतों की थी।

अछूतों को निम्न तबके का मानते हुए उन्हें खेत में हल जोतने, मोची का काम करने व चमड़ा बनाने आदि के कामों में लगा दिया गया । जिन लोगों ने इसका विरोध किया, उन्हें गाँव से बाहर कर दिया गया और उन का हुक्का पानी बन्द कर देने जैंसी धमकियों से डराया गया। '––– लेकिन आखिर इन सब का शिकार तो दलित ही बनता है। जैसा कि दुलीना गाँव में हुआ, उन का दोष सिर्फ यही था कि उन्होंने गाय की खाल उतारने का काम खुली जगह में किया । यही बात गोहप्पा की अफवाह बन कर उन की मौत का कारण बनी। अगर यह मान भी लिया जाए कि इन दलितों ने गाय को मारा था, तो यह कहाँ का इंसाफ है कि एक गाय की जान के बदले 5 लोगों को जान से मार दिया गया है तो 5 लोगों की हत्या के जुर्म में गाँव वालों को आखिर क्या सजा दी जाए?

अक्सर गांवों में जानवरों के मर जाने पर उसे निचली जाति के लोगों को दे दिया जाता है। अगर ये लोग इन मरे जानवरों के लेकर उन का चमड़ा न निकाले, तो इनसानों के दफनाने की जगह पर जानवरों को दफनाना पड़ेगा । ऊँची जाति के लोग जानवरों का शिकार करना तो खानदानी शौक समझते हैं। फिर भला गाय का मांस काटने वाले दलितों को इतनी बड़ी सजा क्यो दी गई? सिर्फ अपने शौक के लिए किसी पशु की जान ले लेना कहाँ का कानून है।

हिन्दू समाज में इन लोगों के लिए कोई सजा नहीं है। गाय भी तो एक जानवर है। उसे दूसरे जानवरों से अलग क्यों समझा जाता है? और अगर गाय को पूजा जाता है तो फिर गाय का खरीदना बेचना भी बन्द होना चाहिए, दूध न देने पर वे जब गाय को बहुत ही बेरहमी से पीटते है। तब वे खुद भूल जाते है कि वह भी एक तरह से अत्याचार, अन्याय और पाप कर रहे हैं, जो कि बिल्कुल ही बन्द कर देना चाहिए। जिस तरह से माँ को दान में नहीं दिया जा सकता, उसी तरह से गाय को

दान में देना भी तो बन्द हो जाना चाहिए था। असल तो यह है कि सभी पुराण, स्मृतियां गौदान की महिमा से भरी पड़ी है। यह गौदान सिर्फ ब्राह्मणों को ही करना होता था। अब अगर किसी में गाय के प्रति ज्यादा प्रेम उमड़ रहा है, तो वे गौदान क्यों नहीं बन्द कराते।

एक ओर गाय को गौमाता कहकर पूजा जाता है, तो दूसरी तरफ बकरे, मुरगे आदि को काट कर खाया जाता है, जहाँ गाय, भैंस की खाल को काटने का विरोध किया जाता है, वहीं चमड़े के जूते, जैकेट, बेल्ट आदि पहनने में लोग अपनी शान समझते है। दलितों को मंदिर में घुसने नहीं दिया जाता है। लेकिन इन सब बातों से तो सिर्फ सही मतलब निकलता है कि वर्ण व्यवस्था पर आधारित हिन्दू समाज में निचलों की नियति हमेशा अपमान सहने की ही है, उसी में सवर्णो का सम्मान है। यह सब निचली जाति के लोगों के साथ सरासर नाइंसाफी है। दलितों पर अत्याचार हमेशा से होते चले आ रहे है चाहें कोई भी राज्य का नाम ले लिया जाय हर राज्य में ये अत्याचार अपनी नई कहानी कह रहा है। आन्ध्र प्रदेश में एक दलित महिला के वस्त्र भरी पंचायत के समक्ष उसके पति व ससुर की मौजूदगी में उतार दिये गये तथा पूर्ण नग्न अवस्था में ही उसकी लाठी डंडो से ठाकुरों के कहने पर पिटाई की गई, उसके पति व ससुर तथा पंचायत में कोई भी ऐसा मर्द नहीं था जो उस महिला के सम्मान को बचा सकता उसका हाथ तोड़ दिया गया तथा पुलिस में शिकायत करने पर उसे उसके बच्चे तथा उसके पति व ससुर को जान से मारने की धमकी दी गयी, उस महिला का कसूर सिर्फ यह था कि उसने अपनी जमीन में से रास्ता देने के लिए साफ तौर पर इन्कार कर दिया जिससे क्रोधित होकर ठाकुरों ने उसके पति.तथा ससुर को धमकाया क्योंकि उसके पति व ससुर अनपढ़ थे और वे उन ठाकुरों के धमकाने में आ गये उन्होंने जब अपनी बहू को समझाना चाहा तो उसने उनकी बात सुनने के बाद उनकी बात मानने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह एक पढ़ी लिखी महिला थी उसने अपनी जमीन में से रास्ता देने से इसलिए मना कर दिया क्यों कि वह रास्ते लायक भूमि नहीं थी उसमें खेती होती थी, और उसमें उस समय फसल खड़ी थी, फसल बेकार हो जाती इस वजह से उसने रास्ता देने से इन्कार कर दिया । ठाकुरों ने पंचायत बुलाई और पंचायत के समक्ष ये कहा कि ये दलित महिला होकर और हमारी आज्ञा की अवहेलना की और अनेक तरह के उस पर आरोप लगाये गये। सारी बात सुनने के पश्चात पंचायत ने उस महिला के लिए ये सजा निर्धारित की कि इसको (नंगा) निंवस्त करके इसको डंडो से पीटा जाय उसके पति व ससुर को बाँध दिया गया और भरी पंचायत में उस महिला को निंवस्त करके उसे मारा पीटा गया और उसे इतना मारा कि उसका एक हाथ तोड़ दिया गया उसकी समाज की पंचायत ने धज्जियाँ उड़ा दी जैसे कि वह एक इंसान न होकर एक जानवर थी। उसको बगैर अपराध किये सजा दी गयी वो भी ऐसी सजा जो कि इंसानियत के नाम पर एक कलंक है, एक धब्बा है जिसे कभी नहीं मिटाया जा सकता, क्या उन अपराधियों को जिन्होंने उसको ये सजा दिलवायी या उसके साथ ऐसा कृत्य किया उनको दण्ड देने से, जो भरी पंचायत में उसका अपमान उसकी बेइज्जती की गयी क्या वो उसकों वापस मिल जायगा द्य कभी नहीं उसको अपना सम्मान वापस नहीं मिलेगा पर ये जरूर होगा कि किसी अन्य दलित महिला के साथ ऐसा नहीं होगा उनको ऐसा दण्ड दिया जाय कि जब तक वह लोग जीवित रहें अपने आप से घृणा करते रहें ये सबक उन्हें जरूर मिलना चाहिए, ताकि किसी अन्य व्यक्ति की हिम्मत न हो कि वह किसी भी दलित महिला के साथ ऐसा कृत्य करें। आज हमारा समाज आधुनिक होने का ढोग कर रहा है कि हम बहुत ही आधुनिक हो गये है कि हम जाति–पाँत नहीं मानते है पर कहने भर से कि हम जाति–वाद नहीं मानते क्या जाति वाद खत्म हो जायगा, ऊँची जाति के लोगों को देश आजाद हो जाने के बाद स्वतंत्रता मिल गयी वे आज आजाद है पर दलित तो आज भी गुलाम है, और वे गलामी का बोझ ढो रहे हैं द्य मै यह पूछना चाहती हैं कि आखिर वे कब आजाद होंगे क्या उन्हें स्वतंत्र होने का अधिकार नहीं है। पिछले तीन–चार बरसों से महानगरों और नगरों में बलात्कार, डकैती और

कत्ल की बारदातों संवधी रपटे अत्यधिक छपने लगी हैं। अब तो बलात्कार दिन दहाड़े, महानगर के बीचों बीच सड़क के किनारे पर या चलती हुई बसें एवं ट्रेनों में किए जाने लगे हैं । डकैतियों की तो भरमार हैं। बूढ़े दम्पति जो सेवा मुक्त अफसर होते हैं, डकैतों के खास शिकार बनते है। ऐसी ही एक घटना में देश के एक वरिष्ठ नागरिक और पूर्व केन्द्रीय विधि मंत्री बुरी तरह से घायल कर दिये गये थे। ग्रामीण इलाकों से दूसरी तरह के समाचार छप रहे थे। जाति के अन्दर ही सगोत्र विवाह अंतरजातीय विवाह, नजदीक के रिश्तेदारों में विवाह विधवा विवाह अब ऐसे अपराध बन गए हैं कि दण्ड मिलता है सार्वजनिक अपमान या गाँव से निष्कासन । इन अपराधों के फैसले गाँव या जाति–विशेष की पंचायतें करती हैं । यह कहना कठिन है कि गाँव या जाति विशेष के सभी लोग उन फैसलों में शामिल होते हैं, किन्तु अनुदार और रूढ़िवादी तत्व इतने हठी हो गये है, कि वे मनमानी करते ही है। चम्पारन के एक गाँव में एक तैतीस वर्षीय विधवा और छत्तीस वर्षीय विधुर के विवाह पर उनका अपमान

और गाँव से निष्कासन हाल में ही हुआ है। ––दलितों पर अत्याचारों के समाचार देश के सभी भागों, लेकिन अधिकतर तमिलनाडु, बिहार व आंध्र प्रदेश से आते है और आदि–वासियों का जीवन मध्य प्रदेश में विशेष तौर पर इधर हो रहा है । देवास, गुना, शिवपुरी, सतना आदि जिलों से ऐसे समाचार मिले ही है। इन सब मामलों में प्रशासन अत्याचारी लोगों का साथ देता है। अधिकतर, वन विभाग के अधिकारी ही इन अत्याचारों की जड़ में होते हैं, जिनकी सांठ–गांठ जंगली लकड़ी के ठेकेदारों से होती है और पुलिस इन ठेकेदारों के धन की गुलाम होती है । यू भी वीरप्पन का एक ही उदाहरण यह दिखाने के लिए काफी है कि हमारा प्रशासन कितना सड़ गया है । मूल बात पर आए । वह है समाज में उन प्रक्रियाओं के पुनरोदय कि जिनके विरूद्ध उन्नीसवी शताब्दी में राजा राम मोहन राय से लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती और ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज व आर्य समाज शिक्षण और जन जागति का काम करते रहें । मुस्लिम समुदाय में भी बदरूद्दीन, तैयब जी मुहम्मद अली. जिन्ना, सर सैयद अहमद, देवबंद स्कूल आदि सक्रिय रहे। अभी तक तबलीगी जमात और अन्य संस्थाएं एक पत्नी प्रथा, पत्नी से सद्व्यवहार और उसके मेहर तलाक में उसके साथ न्याय का संकेत देती रहती है, परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि समाज सुधार की ये प्रवृत्तिया दुर्बल होती चली गई। यह बात सभी धार्मिक समुदायों पर लागू होती है कि नारियों की दुर्दशा खासतौर पर बढ़ी है। दहेज की माँग अब सभी जातियों में होने लगी है। दक्षिण भारत के जिन राज्यों या सामाजिक समूहों में मातृ–सत्तात्मक समाज थे, वहाँ भी सम्पत्ति को लेकर पितृ–सत्तात्मक समाज थे समुदाओं की रीतियां प्रबल होने लगी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय शासन एवं राजनीति लेखक डा0 अशोक रस्तोगी पृष्ठ सं0 220 प्रकाशित वर्ष 1999।
2. दैनिक जागरण समाचार पत्र दि0 10.3.2002 लेखक नरेन्द्र मोहन पृष्ठ सं0 10 ।
3. प्रतियोगिता दर्पण पत्रिका दिनांक 3.3.2003 पृष्ठ सं0 1427–30 ।
4. दैनिक जागरण समाचार पत्र दिनांक 16.8.2002 लेखक उदित राज पृष्ठ 10 ।
5. दैनिक जागरण समाचार पत्र दृ दिनांक 20.8.2002 लेखक हुक्मदेव नारायण यादव पृष्ट दृ 10
6. सरस सलिल पत्रिका 16.11.2002 लेखिका उषा नेगी पृष्ठ सं0